सन्निपात

उफ! उमस पसीना नहीं लसलसाहट उगल रही।

बेहाल दोपहरी न खुद ऊँघ रही है, न उन्हें ऊँघने दे रही।

बेना डोलाते उनके हाथ थककर अचानक थमक जाते हैं। बाईं करवट होते हैं तो बायाँ हाथ, दाहिनी करवट होते हैं तो दायाँ।

असर फिर भी बेअसर। चुटकी भर राहत बेना डोलाते हाथों को तब मिलती है जब रिसते पसीने से लिपट चुल्लू भर हवा में नन्हे झोंके, तन से लिपट मन को जुड़ाने लगते हैं। उन्हें उन पलों में महसूस होता है जैसे वह किसी पराए कमरे में नहीं, अपने वातानुकूलित कमरे में आराम कर रहे हों। उन्हें मायने - ठाकुर अखिलेश प्रताप सिंह को।

भ्रम ही सही मगर भ्रम खासे रसीले-हठीले होते हैं। जब भी होते हैं, तर्क की मक्खी की नाक पर बैठने की कोशिश को उड़ाए-दुरियाए रखते हैं।

छाती पर धरे, न कटते सिल जैसे समय की सुई को थोड़ा आगे ठेल देते हैं। चलो कुछ और कटा। कहना ही तो पड़ रहा है। इसी बहाने कट ले।

बेचौनी से बतियाते हैं।

लड़कैयाँपन से निवाड़ के पलंग पर सोने की जो आदत उनकी पड़ी है, वह धमनियों की धबधबाहट हो गई, बनी रही और उसे बनाए रखने का सुख जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर उन्होंने खोना भी नहीं चाहा। वही ढीठ आदत लोहे के इस फोल्डिंग पलंग से समझौता नहीं कर पा रही। अजीब जबरई है। नींद कभी तो आए। उन्हें समझ में नहीं आ रहा कि निवाड़ का पलंग छोड़ जब उन्होंने स्वयं सस्ते से लोहे के पलंग पर सोने का निर्णय कर लिया तो फिर उनकी आदत उनसे बगावत क्यों कर रही? आज तक रिकॉर्ड बना हुआ है। जब भी उन्होंने सोचा, दिन हो या रात, बहुत जग लिए अब उन्हें सो जाना चाहिए तो पलंग पर गिरते ही नींद उनकी आँखों में आ दुबकी। खुली, तो जिस समय उन्होंने उठने की सोची, खुल गई। न अलार्म लगाने की जरूरत, न किसी से यह कहने की कि उन्हें सुबह फलाँ-फलाँ समय चाय देकर जगा दिया जाए।

माना कि उनकी चली आ रही आदत को शानदार निवाड़ के पलंग को छोड़ लोहे के फोल्डिंग पलंग पर सोने की मजबूरी झेलनी पड़ रही है, तो क्या हुआ? पड़ रही है तो पड़ रही है। वह उनकी मर्जी के विरुद्ध कैसे जा सकती है! उन्हें भी बहुत कुछ अखर रहा है। दोपहरी हो या रात। विश्राम या सोने के लिए जैसे ही लेटते हैं, फोल्डिंग पलंग पर अहिस्ता से लेटने के बावजूद भूचाल सा आ जाता है कमरे में। करवट चाहे वह जितनी आहिस्ता से भरें, भूचाल को खबर हो ही जाती हैं कि उसे आना है।

कहीं वजन तो नहीं बढ़ गया उनका?

बिना खाए तो नहीं रहेंगे लेकिन पेट भरने के लाचारी भरे उपक्रम को पौष्टिक भोजन कर पाना तो कहेंगे नहीं। कैसे बढ़ सकता है?

इधर व्यायाम में अनियमितता आ रही है। यूँ तो साँझ को टहल लेते हैं लेकिन जानते हैं कि मात्र उतना टहलना देह के छीजते जोड़ों के लिए पर्याप्त प्राणवायु नहीं है।

यहाँ आए रहने से तो तीन रोज तक देसी के चलते पाखाने ने भी उनसे ठनगन ठान ली।

बैठ गए तो उठने की दिक्कत। दीवार और गंदे फर्श का टेका लेकर तीन-चार बार भरभराने की सीमा तक पहुँचने के बाद, स्वयं को किसी प्रकार साध कर वह उठ पाए। इवाकोल और स्टूल साफ्टनर दोनों वक्त खाकर तो चौथी साँझ को उन्हें कुछ राहत मिली।

पाखाने की दिक्कत को लेकर मकान मालिक से उनकी बात हुई। उनकी परेशानी उनकी समझ में आई। उस साँझ एक कारपेंटर को भेजकर उन्हें पाखाने की दाईं-बाईं दीवार पर लकड़ी की दो मूठें ठुकवा दीं। मूठों से कोई ज्यादा सहूलियत नहीं महसूस हुई उन्हें। उचकना तो तब भी पड़ता ही पड़ता है, ताकत निचुड़ जाती है।

वैसे यहाँ इस कमरे में डेरा डाले हुए उन्हें महीने से ऊपर हो रहा है। बताने में हर्ज नहीं। यहाँ माने उन्नाव के इस प्रतिष्ठित सिविल लाइंस की ऊँची रिहाइश में।

कमरा पुरानी तर्ज का चबूतरे से जुड़ा छोटा नहीं है। रसोई अलबत्ता जरूरत से ज्यादा सँकरी। नहानघर और पाखाना घोर पुराने चलन का, वह भी कमरे के बीस-पच्चीस कदम पिछवाड़े। रात-बिरात उन्हें लघुशंका की खातिर ऊँची घास-फूस मँझाते हुए जाना पड़ता है। आदत नहीं है। जहाँ-तहाँ खड़े हो लें। साँप, बीछी के डर से जी ऊपर धुकपकाता है। मजबूत जी अँधेरे से नहीं भयभीत होता। घास-फूस से डरता है। टॉर्च की वृत्ताकार तीखी रोशनी गुँथी सघन घास के तलछट को जो भेद नहीं पाती।

दाहिने हाथ ने थोड़ा सुस्ताना चाहा।

बेना डुडुर, डुडुर डोलने लगा।

क्षणांश जबरन मूँद रखी आँखें खोल उन्होंने छत पर स्थिर पंखे की ओर देखा। बिजली अब तक नहीं आई।

लखनऊ और उन्नाव में कुछ तो फर्क होगा! राजधानी चाहे प्रदेश की हो या केंद्र की, शिकायत फिजूल है।

अनुमान है उनका, आलीशान 'अन्नपूर्णा भवन' का पिछला यह हिस्सा एक समय कोठी के नौकरों-चाकरों का रहा होगा।

बढ़ती महँगाई के तोड़ के रूप में इस्तेमाल करने की बाध्यता ने ही मकान मालिक को इस कमरे को किराये पर चढ़ाने के लिए मजबूर किया होगा।

ठीक है। खयाल गलत नहीं है मगर किरायेदार की बुनियादी सहूलियतों को ध्यान में रखकर कुछ तब्दीलियाँ उन्हें पहले ही करवा लेनी चाहिए थीं। नौकरों के कमरे में रहने वाले वह उनके नौकर तो हैं नहीं। वह ऐसा सोच भी कैसे सकते हैं। इनकी तनी हुई मूंछों को देखकर ही उन्हें समझ लेना चाहिए था कि वह किराये पर कमरा किसी ऐरे-गेरे को नहीं उठा रहे।

लखनऊ में उन्होंने अपनी गोमतीनगर वाली कोठी में इस बात का विशेष खयाल रखा था कि कोठी के तल के प्रत्येक कमरे में नहानघर और पाखाना, जुड़ा हुआ हो।

पाखाना, वह भी आधुनिकतम कमोड सिस्टम वाला।

कोठी बनवाने से पहले पत्र-पत्रिकाओं के विज्ञापनों में वह जहाँ कहीं भी आधुनिक नहानघर और पाखानों का विज्ञापन देखते, ठिठककर उसे गौर से देखने लगते।

"हिशSS - "

कोई मक्खी गाल पर आ बैठी। बेने के डंडे से उन्होंने उसे उड़ाया।

तुलना उचित नहीं। होने लगती है स्वतः तो वे कर भी क्या सकते हैं?

गाँव जाने के नाम पर उछाह से उतरा आने के बावजूद एक यही अड़चन सदैव उन्हें अनमना करती रहती है।

मंगलू के आने का समय अभी नहीं हुआ है शायद।

शायद! तपन से निजात दिलाने के लिए मंगलू ही यह बेना खरीद लाया था उनके लिए।

गाँव में आमा पानी भरे कठौते में बेना भिगोकर डोलाती थीं। ठंडी हवा फेंकता था बेना कठौते में भीगकर।

डुग, डुग, डुग, डुग, डुग, डुग -

उनका दाहिना हाथ थमक गया। बेना डोलाता।

कोई ताल आई है कानों में। धीमी। दूर से।

यहाँ?

लय और ताल एक-दूसरे में समाए हुए।

मगर यहाँ?

मदारी आया है उनकी गली में?

बंदर-बंदरिया का खेल गली में ही तो जमता है। बंदरिया रूठ सकती है अपने दूल्हे से। दुलहिनें नहीं रूठ सकतीं घरों में अपने दूल्हों से, नाटक ही सही। बंदरिया सा साहस दुलहिनों में कहाँ? भाता है खेल। खेल में तमाशा। तमाशे में दुस्साहस। मना कर देती है दूल्हे के संग जाने से!

मदारी नहीं है। मदारी का डमरू तेजी से कड़कड़ाता हुआ सहसा बीच में झन्न, झन्न गुलाटी खाता पलट पड़ता है उसी कड़कड़ाहट में।

बिसाती तो नहीं।

बिसाती डमरू नहीं बजाता।

पिपिहरी बजाता हुआ घुसता है गाँव के गली-गलियारों में।

उहूँ!

गलत। उनके गाँव, माने धनुहीखेड़ा में आने वाला बिसाती ननकू डमरू भी रखता था अपने पास।

कभी बाँसुरी, कभी डमरू, कभी पिपिहरी! कोठरियों, दलानों और अटारी पर बने सजे-धजे कमरों में भीगे डेने डोलाते, चूड़ियाँ खनकाते हाथ थमक जाते। रस्याउर की

मिठास घुले स्वर, सुर और टहक लिए। (ताजे गन्ने के रस की खीर) उन्हें अपनी ओर बुलाते।

अपनी अनोखी, अलबेली दुकान बाँस पर टाँगे कंधे से सटाए हुए। सब कुछ दुनिया-जहान का।

दुलहिनों और किशोरों के लिए रंगीन फुँदनों वाले सूती, रेशमी चोटीले। झल-झल झलकारें मारती काँच की टिकुलियाँ। राल की डिबियाँ।

लहराते बालों की उड़नछू होने को व्याकुल लटों को नस लेने वाली प्लास्टिक की 'चुट्ट' से बंद होने वाली क्लिपें।

लाल मछरी-सी।

पीली-काली तितली-सी।

ढीले पायजामों वाले छौनों को लुभाते आँखों के रंगीन चश्मे! गेंदें! गुब्बारे! कंचे! पिपिहरी! बाँसुरी! कैंची! सुई! धागे!

दुधमुँहों को नजर से बचाने की खातिर काले डोरे, ताबीज। छेदहा पइसा। ढोलने! काठ की मुँह की चुसनी।

नाक तक खिंचे घूँघट से निकल कलाई भरी चूड़ियाँ खनकाती एक बाँह, उन्हें अचानक धर लेती लपककर।

"मोर छुट्टन! कहाँ भागा रहयो तनि सुनो न! सुनो।

धरो ई दुई रुपया।

दुलारे बिसाती आवा है न!

हमरे बरे ओठन की एक ठो लाली ला देओ न।

"ला देहो तो हम तुम्हरे बरे कल मिठुआ की दुकान से पौवा भर कंपट मँगा देबै - "

करवट भरी।

भौजी?

बायाँ हाथ उठा और बेना डोलाने लगा।

दूर से निकट और निकटतर आती डमरू की मदमाती लय अब धीमी नहीं रही। उनके सीने में पैठ रही। सीढ़ियाँ उतरती।

गुनगुने घास-सी गौरैया की छुअन।

लय झूम रही।

दबे पाँव। सधे पाँव। घुमेर लेते पाँव। हिलोर भरते पाँव।

माथे से ढलका पल्लू डैनों-सा उड़ रहा। पहली बार चेहरा दिखा। डाली पर थर्राता चम्पा का फूल। चपल किशोरी झुमरी बेड़िन का मासूम चेहरा। किसने तराशे नयन-नक्श!

बचि के सँवरिया मोरे बचि के सँवरिया

मोर लागी नजरिया,

लागी नजरिया

मोर लहँगा न डँसि ले तोहे बन के नगिनिया

तनि बचि के सँवरिया -

महसूस हुआ सहसा। बेना डोलाता बायाँ कंधा दुखने लगा है।

बाईं करवट ज्यादा देर लेट भी नहीं पाते। बुढ़ापे की ओर बढ़ती देह में बायाँ कंधा कुछ ज्यादा जल्दी ही बुढ़ा गया, लगा उन्हें।

फीजियोथेरेपिस्ट डॉ. फ़ैज़ा ने चुटकी भरी थी, सिंह साहब अब मान भी लीजिए कि एज फैक्टर के अपने रंग होते हैं।

तीन रोज पहले गाँव गए थे।

सोचकर गए थे और किशोर सेवक मंगलू से कहकर गए थे कि मन न उचटा तो तीन-चार रोज उनका गाँव में रहने का इरादा है। हुड़क मच रही है। जाने क्यों?

यों तो जब भी लखनऊ से गाँव की ओर निकलतेय अपनी चहेती सेंट्रो लेकर निकलते। यातायात के निरंतर बढ़ते दबाव के बावजूद लखनऊ के भीतर स्वयं ही गाड़ी चलाते।

हजरतगंज में चाहे चौधरी की मलाई की गिलौरियाँ खाने की इच्छा हो या टुंडा के कबाब।

गाँव बहुत दूर न होने के बावजूद अकेले गाड़ी ले जाने में सदैव हिचकिचाते। ऐसा नहीं कि वहाँ तक गाड़ी चला नहीं सकते थे। दरअसल हिचकिचाहट थी इस बात की कि वह गाँव-घर को दर्शाना नहीं चाहते थे कि भले वह नौकरी करते रहे हैं सरकारी मगर रहते हैं अपनी शान से। जो भी हो, अपने गाँव वह बिना ड्राइवर के कभी नहीं गए। बिना महावत के हाथी पाल सकता है कोई रईस?

लखनऊ से उन्नाव पहुँचने में कम से कम घंटा भर तो लग जाता। उन्नाव से गाँव धनुहीखेड़ा पहुँचने में लगभग डेढ़ घंटे से कुछ ऊपर। अचलगंज और बारा होते हुए निकलना होता है। सड़क सीधी है। बहुत चौड़ी नहीं है तो सँकरी भी नहीं। एकाध जगह जमकर मरम्मत माँगती है। गनीमत समझो। पुराने दिन याद आते हैं तो जूड़ी चढ़ती है।

इतनी उन्नति कम है।

दिलावर उनकी सरकारी गाड़ी चलाता था।

अवकाश-प्राप्ति के उपरांत दिलावर ने निश्चय कर लिया था, वह कुशल ड्राइवर होने के बावजूद किसी की निजी गाड़ी नहीं चलाएगा। टैक्सी स्टैंड की टैक्सियाँ चलाएगा। शहर से बाहर की सैर करेगा। देश के अदेखे कोने देखेगा।

हाँ, बाबूजी की बात जुदा है। गाड़ी लंबी न सही उनकी तो क्या हुआ। दिल बड़ा है उनका, इतना कि चार लखनऊ समा जाएँ।

जब भी बाबूजी को जरूरत होगी उसकी और जितने दिनों की होगी, वह उन्हें मना कर सकता है क्या कभी?

दिलावर की जरूरत उन्हें गाँव जाने के समय पड़ती।

मुँह अँधेरे निकलते कि पौ उन्नाव में फटे।

साथ अपनी राइफल रखना न भूलते। जरूरत न भी पड़े उसकी मगर उसका साथ होना जरूरी होता।

साथ चलती रहतीं रह-रह काँख गुदगुदाती बिना महुआ कंठ से उतारे महुए की मादकता में डूबी दिलावर की लंतरानियाँ।

दो स्पष्ट माँगें होतीं दिलावर की उनसे।

मौसम हुआ तो गुल्लू (महुआ का फल) की लजीज सब्जी बनवाकर खिलवा दें गाँव वाली बड़ी मलकिन से।

रात ठहरने का इरादा न बने तो लौटती बेर गाड़ी चलाते हुए अँग्रेजी के घूँट भरने की इजाजत दे दें। बाबूजी जानते हैं। गला तर होते ही स्टीयरिंग पर उसकी पकड़ अधिक चौकन्नी हो उठती है।

लौटती बेर दिलावर एक और जरूरी काम को अंजाम देने से न चूकता।

गाँव का क्षेत्रफल पार करते ही सहसा गाड़ी को कटरी की ओर मोड़ देता। झुमरी के दरवाजे वह जा नहीं सकते थे। झुमरी समझती थी इस बात को। उन्हें भैरव सिंह के विशाल बाग के पिछवाड़े वाले बरगद की आड़ में उतारकर वह गाड़ी से झुमरी को उनके पास ले आता।

पिछली दफे, डेढ़ साल पहले मिले थे तो अचानक अहसास हुआ था उन्हें कि झुमरी देख तो उनकी ओर रही है मगर देख कहीं और रही थी। उसकी आँखों का मोतियाबिंद खतरनाक मोड़ ले चुका था।

"सीतापुर नहीं गई तुम आँखों के ऑपरेशन की खातिर?"

झुमरी ने सवाल सुना और अपनी आँखें नीची कर लीं।

"पूछ रहे हैं हम कुछ तुमसे?"

झुके चेहरे के होंठों पर शब्द बटोरती हल्की-सी फड़कन हुई मगर चिपकी चुप्पी नहीं टूटी।

"बोलो झुमरी? आँखों का ऑपरेशन निहायत जरूरी है तुम्हारे लिए। लापरवाही ठीक नहीं।"

होंठों पर अबकी ओस की कुछ बूँदें आकर ठहर गईं दिखी उन्हें।

"झुमरी! रो क्यों रहीं?"

" - - - "

"पूछ रहे हैं हम कुछ तुमसे - "

" - - - "

मौन खला। अधीर हो आए वह।

"समय नहीं है हमारे पास झुमरी। सूर्यास्त से पहले-पहले हमारा उन्नाव पहुँचना जरूरी है।"

असर हुआ। होंठ अबकी फड़के तो खुले। ठिठके। वापस खुले।

बालों में सफेदी उतर रही मगर नमकीन मासूमियत ठीक वैसी ही है जैसी पहले-पहल उन्हें दिखी थी।

पिछले कई बार से बस उन्हें उसकी नाक में झूलती बुलाक नहीं दिखी जो उसके बोलने के लिए आतुर होंठों के खुलते ही सिहर उठती थी।

"जाए वाले रहिन सीतापुर - आँखिन के अस्पताल - रुपिया जो दई गयो रहे पाँच हजार खर्च-पानी के बरे - सँजो के धरे रहिन, उतरत पूस अचानक रमुवा की तबीयत बिगड़ गय -

तीन-चार खून की उल्टी भय - "

फिर चुप्पी।

चुप्पी पिघल रही, चुप्पी साधे।

गालों से रपटती ओस की बूँद होंठ पर ठहरी हुई बूँद में आकर गुम हो गई। गुम हो रही थीं।

मन किया था सदैव की भाँति आगे बढ़कर बूँदों को अपने होंठों से छू लें।

उनके होंठ डाँटेंगे जरूर उन बूँदों का। "बुलाक क्यों बेंच दी! हमें काहे नहीं खबर करवाई, झुमरी।"

"अब कैसा है रमुवा?"

"डाकदर कहिन टीबी है रमुवा का, उन्नाव लै जाके इलाज करवाओ।"

"गईं?"

'गए मालिक - "

"नासकटौनू धोखा दईगा, महतारी क छाँड़ि भगवान के पास चला गा, मालिक हम काहे जिंदा हन - "

झुमरी उनकी छाती पर भरभरा गई थी, "मालिक झुमरी का दूसर रमुवा दई देओ, आसरा चही, केहि के आसरे जिनगी काटब - "

"घुरर, घुरर - " छत पर पंखा डोला शायद दो हिस्सें में कटी पड़ी देह ने एक जोड़ी आँखें खोलीं। बिजली आ गई?

एक चक्कर लगा पंखे के डैने ठहरते-ठहरते ठहर गए।

अहाते के बाहर बिसाती पिपिहरी बजा रहा। बजाकर दिखा रहा होगा पिपिहरी खरीदने वाले बच्चे को। देख लो। तसल्ली कर लो। ठीक से बज रही कि नहीं।

करवट भरी। वजूद के दूसरे हिस्से को खुद ही जकड़कर करवट किया।

इस बार की क्या कहे!

जैसे गए गाँव वैसे तो कभी नहीं गए। बस से नहरिया के किनारे उतरते ही पाँव ठिठके, तो फिर ऐसे नंगे-छूँछे चले क्यूँ आए? पड़े रहते जहाँ पड़े हुए थे। बुलौवा तो भेजा नहीं था गाँव ने। भीतर पसरा बीहड़-सा विषाद दूसरों के चेहरे पर उगे प्रश्नों के साथ घूमती तकली पर खिंचती पूनी-सा खिंचता ही नहीं चला जाएगा।

पहुँचे तो बड़े भैया सनई की बटी रस्सी को ढेरा नचाते हुए से रस्सी लपेटते दरवाजे पर ही खटिया पर बैठे मिल गए।

पाँव छूते ही भौंचक हुए, "तुम? गाड़ी कहाँ है छुट्टन!"

गाड़ी को टोहने के लिए उन्होंने इधर-उधर नजर दौड़ाई।

बात बनाई, अकुराती जबान से।

"दिलावर छुट्टी लेकर लखीमपुर गया हुआ है अपने गाँव। रुककर उसके लौटने का इंतजार कर सकता था।

फिर मन किया कि बात उठी है मन में कि घर चला जाए तो निकलने में दिक्कत कैसी? न सही गाड़ी।"

कह तो गए झूठ पर डरे। कहीं बड़े भैया पलटकर यह न कह दें कि कभी-कभार फोन पर भी हालचाल ले-दे लिया करो। माने, मन बना था तो फोन पर इत्तिला भर कर देते। जीप लेकर कोई बस स्टैंड पहुँच जाता।

बड़े भैया ने पलटकर ऐसा कोई सवाल नहीं किया बल्कि फूटी परम प्रसन्नता उनकी मरोड़ी मूँछों तक फैल गई।

रस्सी बटना उन्होंने रोक दिया। खाली समय का उपक्रम है यह उनका।

"आ गए हो तो रुको कुछ रोज छुट्टन। अच्छा ही है। गाड़ी लेकर नहीं आए वरना धैया छूकर भागते।

तुम्हारे टिकने का इंतजाम भी हो रहा है। सलाह करनी है तुमसे।

इरादा है। बाहर वाले बंगले में देशी की बगल में तुम्हारी खातिर एक विदेशी टट्टी बनवा दें।

क्या कहते हैं उसे?"

ओढ़ी खुशी फूटी और लहकी। "कमोड।"

"हाँ-हाँ, वही। दरअसल छुट्टन, चलते पानी की समस्या हो रही है। उसका भी समाधान खोज लिया जाएगा। वोऽऽ सगवर वाले विक्रमादित्य सिंह को तो जानते हो तुम?

पिछले दिनों अपने यहाँ उन्होंने बनवाई है विदेशी टट्टी।

बात हुई है उनसे। बता रहे थे, कानपुर की कोई प्रतिष्ठित हार्डवेयर की दुकान है जो पूरे काम का ठेका ले लेती है।

क्या सोचते हो तुम?"

"ठीक सोच रहे आप। जरूरत है।"

टट्टी बन जाए वैसी तो वह गाँव आकर रह सकते हैं जो उन्होंने कभी नहीं सोचा।

"तो कल ही बात करता हूँ विक्रमादित्य से। जरूरत हुई तो एकाध रोज में कानपुर हो आऊँगा।"

ओढ़ी लहक उदास निःश्वास में बदल गई।

गनीमत। बड़े भैया को उनके लखनऊ छोड़ने की कोई भनक नहीं है।

"नहा-धो लो।"

"नहा-धोके निकले हैं - "

सेवक रामऔतार से बड़े भैया ने उनके चाय-पानी की खबर भिजवा दी घर के भीतर।

यानी बेटे अभय को उनकी कोई चिंता नहीं। एक रात वृद्ध पिता अचानक घर से गायब हो जाता है, घर पर कोई सूचना दिए बगैर। कोई पुर्जा लिखे बगैर। बंगले के गेट पर लगा हुआ ताला सुबह उन्हें खुला पड़ा हुआ मिला होगा। बहू हमेशा की भाँति दूध वाले की घंटी बजने पर अपनी चाभी से गेट का ताला खोलने आई होगी और खुले पड़े हुए ताले को देखकर चौंकी नहीं होगी?

कोई तहकीकात नहीं।

चाय आ गई। तुलसी-अदरक की गाढ़ी चाय। स्वाद और गंध ही अलग। घर के दूध में चाय का रंग फूटता है।

भौजी नहीं रहीं। घर के भीतर पाँव देते जी खदबदाता है।

अभय की अम्मा पूरबगाँव वाली भौजी से पहले ही चल दी थीं। चार साल होने को आए।

भौजी देवर नहीं, बेटी विदा करती थीं। खटोले चढ़ी बड़ी बहू को हिदायतें देती रहतीं।

अनाज-पानी से सेंट्रो की छोटी-सी डिक्की ठुँस जाती।

मटरहा आटा, कुम्हरौड़ी, मेथौरी, जौ का सत्तू, आम की सूखी फंकिया, किलहा अचार (समूचे आम का), सरसों के तेल की पिपियाय सूखा निमोना, आम पापड़, सिंघाड़े का आटा, रामधनी चावल और न जाने क्या-क्या।

"चुग्गा है सब चुग्गा।"

"साल भर चुगते रहिए। जमीन-जायदाद में आपका कोई हिस्सा है। लाख-डेढ़ लाख आपके हिस्से का मुनाफा वह साल दर साल डकारते रहते हैं।

नियत डोल चुकी है बड़े बप्पा की।

उनकी चालाकी अभी समझ में नहीं आ रही आपके। जिस दिन पानी सिर से गुजर जाएगा, गाल बजाते बैठे रहिएगा। खोलिए, समय रहते बँटवारे के लिए मुँह खोलिए।"

अभय की उद्दंडता पर खीझ उठते।

"यह क्या बदतमीजी है अभय!

जब भी गाँव से लौटकर आता हूँ, तुम यही बखेड़ा लेकर बैठ जाते हो। क्या कमी है तुम्हें?

मुट्ठी भर जमीन में ऐसा कौन सा राजपाट छिपा हुआ है जिसे पाकर तुम रातोंरात टाटा, बिड़ला हो जाओगे?

मेरे नाम से अलग से 'चक' है। खतौनी नंबर पिछली बार मेरे माँगते ही बड़े भैया ने फौरन लाकर दे दिया था।

बेझिझक। खोट होती उनके मन में तो आना-कानी करते न!

पूछते, अचानक क्या जरूरत आ पड़ी खतौनी की?

जाहिर-सी बात है। तुम्हारी अक्ल में क्यों नहीं आता? हमारी जमीन है। हम जब चाहें, तब उसे बेच सकते हैं। कौन रोकेगा हमें?

एक और बात। मैं रहूँ न रहूँ। 'चक' में तुम्हारा नाम मेरे वारिस के रूप में चढ़ा हुआ है।"

अभय की बिलबिलाहट फिर भी शांत न होती।

पलटवार करता, "खेत रखकर करेंगे क्या?

खेत तो मैं जोतने से रहा। फिर खेती ही करनी होती तो ऊँची पढ़ाई करने आप स्वयं क्यों घर से बाहर निकले?

खेती करते। गल्ला समेटते। आप घर से निकले तो निकले। मुझे भी आपने इंजीनियर बनाकर छोड़ा।

बड़े बप्पा की तरह समझ-बूझकर चलते। विक्रम भैया को उन्होंने एग्रीकल्चर में एम.ए. कराया कि नहीं कराया?

मुझे क्यों अफसर बनाया। बोलिए? किसान बनाने का ख्वाब क्यों नहीं पाला? पढ़ा-लिखा आदमी खेत नहीं जोत सकता?

चलो, नहीं पाला तो ठीक किया लेकिन जमीन रखकर होगा क्या जो मेरे किसी काम की नहीं।

माना पैतृक अचल संपत्ति है। कहीं जाएगी नहीं मगर यह भी सच है, संपत्ति से संपत्ति का विस्तार हो सकता है।

एक और सच सुन लीजिए। भविष्य में खेती किसानों के हाथ नहीं रहेगी। बप्पा! उद्‌योग का दर्जा हासिल करेगी। पूँजीपति ही खेती करवाएँगे। कोई नहीं छूटेगा समय की मार से। छोटे-बड़े सभी किसानों को अपनी जमीनें बेचनी होंगी, चाहे न चाहे। चेतिए।

यही उचित समय है बड़े बप्पा से खुलकर बात कीजिए बँटवारे पर। स्वयं वह बात चलाने से रहे। सोने की मुर्गी के अंडों से कौन परहेज रखना चाहेगा।

देखिए। यह सुनहरा मौका है। लखनऊ या लखनऊ के आसपास या नोएडा से लगा यमुना एक्सप्रेस हाइवे पर एक शानदार बड़ा फ्लैट खरीदा जा सकता है। एक से एक देसी, विदेशी बिल्डर लाभदायी निवेश के लिए नई-नई योजनाएँ लेकर आ रहे हैं।" सुनकर वह विस्मित हुए।

"फ्लैट?"

"हाँ फ्लैट।"

"इतना बड़ा बंगला है न ठाठ से रहने के लिए हमारे पास?"

"है बप्पा लेकिन इस बंगले को हम किराये पर नहीं उठा सकते। फ्लैट हम जमीन बेचकर निवेश की दृष्टि से खरीदना चाहते हैं। उसे हम किराये पर उठा सकते हैं। प्रति माह बँधी हुई अच्छी-खासी रकम आएगी हमारे पास।"

पूरबगाँव वाली जिंदा नहीं है। जिंदा होती तो औलाद की पैरवी को फौरन आ खड़ी होतीं। आँखें दिखातीं। तुमसे बड़ा अफसर है बचुआ। तुमसे चौगुनी तनखाह ले रहा। तुमसे ज्यादा लंबी गाड़ी में चल रहा। नफा-नुकसान की समझ उसे तुमसे ज्यादा है ठाकुर साहब। नए ढंग से सोचता है। आगे की सोचता है। मान काहे नहीं लेते उसकी बात।

कानून तुमसे कम नहीं जानता बचुआ। कह रहा था एक रोज, पैतृक संपत्ति में अब लड़कियाँ भी हकदार हो गई हैं। जमीन बिकेगी तो रविजा और नीलिमा दिदिया को भी कायदे से हक देना होगा। देना होगा तो देंगे अम्मा।

यह बात तो पूरबगाँव वाली ने जीते-जी बताई थी उन्हें।

सुनकर मखौल उड़ाते से हँस पड़े थे वह। अजीब मूरख है।

देना चाहेंगे, तब भी उन्हें विश्वास है। चौहान और कुशवाहा साहब - दोनों दामाद हिस्सा बाँट लेने से साफ मना कर देंगे।

बड़ी बेटी रविजा की तीन ननदें हैं। छोटी नीलिमा की दो।

सरकार का काम है, विदेशों की नकल कर आए रोज नए-नए कायदे-कानून बनाना। अमल कौन करता है? फिर उनके बैसवाड़े के तेवर जुदा ठहरे। वहाँ सरकार के कानून नहीं चलते। चलते हैं भूपति क्षत्रियों के परंपरागत नियम-कायदे। बीस बिसुआ वाले मालदार कान्यकुब्जों के अनुशासन। मजाल कोई राई-रत्ती इधर से उधर हो ले।

सोना उगलती है बैसवाड़े की धरती।

हाँअ, फिर भी उस सोने सी धरती पर भूखा-भूखा ही सोता है। भूखा न सुलाया जाए तो गोड़यों की लगाम कौन थामेगा?

दहलीज में हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बाबा कहा करते थे।

बैसवाड़े की प्रकृति की भी अदृश्य मूँछें हैं, छुट्टन! बैस ठाकुरों की भाँति उसके भी ताव-तेवर कभी ढीले नहीं पड़ते।

अंग्रेजों के जमाने में भी उनकी तोपखाने वाली सरकार उनके दरवाजे ही रामजुहार ठोंकती थी और वसूली को बैठती थी। अपनी सरकार के दिन कौन बदल गए। साल-खाँड़ में जब भी इलाके में पाँव धरती है, उनके ही दरवाजे जीमती है। समझते थे तब भी।

उनके दरवाजे से उनका मतलब था वह दुआर चाहे डौंडियाखेड़ा के वीरेंद्र विक्रम प्रताप सिंह का हो या सगवर के अनिरुद्ध प्रताप सिंह का या निहालीखेड़ा के रघुराज सिंह का।

उस रोज रात गाँव में ही गुजारी थी उन्होंने।

याद किया था मंगलू को। मंगलू खुश होगा। मना रहा होगा उन्नाव में, मालिक का जी लग जाए अपने गाँव में। रुक जाएँ वहाँ तीन-चार रोज, जैसा कि कहकर गए हैं। मंगलू का ऐसा सोचना स्वाभाविक है। काम के बोझ से मुक्त रहेगा लड़का। उनके लिए रोटी जो नहीं पोनी पड़ेगी उसे। अपने घर में अपनी अम्मा के हाथ की पोई रोटी खाएगा। टाट के घर में रहता। ईंटों का चूल्हा है उसके घर। अम्मा ईंट-गारा ढोती हैं ठेकेदारी में।

ट्यूबवेल पर सोने का निश्चय किया था उन्होंने।

बड़े भतीजे ने वहाँ पड़ी बाध की खटिया में मसहरी लगाने का इंतजाम कर दिया था। आग्रह करता था बार-बार। चाचा बंगले में क्यों नहीं सो रहे?

उन्होंने उसे आश्वस्त किया था, अपने खेतों के बीच सोने का सुख लेना चाहते हैं वे। जो कभी नहीं ले पाए।

खाना भी वहीं मँगवा लिया था उन्होंने।

दिन बीत गया था। कुछ पुराने साथियों की देहरी डोल आए थे। साथी तो नहीं थे मगर उनके बूढ़े माँ-बाप से मुलाकात हो गई थी और उनके हालचाल मिल गए थे। वहाँ से निकले तो साथ आए बारी के बेटे रतुवा के संग अपने 'चक' की ओर निकल लिए।

उनके हिस्से के खेत कम नहीं थे। फसल खड़ी हिलोरें भर रही थी।

इतने खेतों के बदले सिर्फ एक बड़ा फ्लैट? जिसे इनके पाँव नापना चाहेंगे तो कुल पच्चीस कदम में नाप लेंगे! नहीं याद कि अपने एक के बाद एक फैले खेतों की मेड़ों-मेड़ वह कितने मिनट तक चलते रहे! चलते-चलते थकने लगे थे।

मात्र खेत ही उनके नहीं थे। खेतों के ऊपर तना हुआ उतना आसमान का टुकड़ा भी उनकी मिल्कियत था, बिना किसी लिखा-पढ़ी के।

बल्कि खेतों की सीमा तक वह सीमित नहीं था। असीमित था।

सोचना तो होगा ही उन्हें कि जो पाएँगे, उसके बदले वह कितना पाना होगा या पाकर कितना खोना।

रतुवा से कहा था उन्होंने। उनकी खटिया को वह ट्यूबवेल वाले कमरे से निकालकर बाहर बिछा दे।

उन्हें नहीं पता कि वह कब सोए। इतना स्मरण है कि वह मच्छरदानी की छत से बड़ी देर तक आसमान के तारों की टिमटिमाहट को देखते रहे थे।

नींद आ गई। शायद उन्होंने नींद से कहा था, आ जाओ। अब मुझे सोना है।

भारी होती हुई पलकों ने उन्हें विस्मित किया था। इतने दिनों बाद नींद ने उनका कहना कैसे मान लिया। वह भी बाध की खटिया पर।

सुबह नींद खुली तो उन्हें लगा भोर वैसी नहीं है जो उन्हें उस रोज गाँव में रुकने के लिए बाध्य कर देती। टीकोजी चढ़ी गर्म चाय की केतली रामऔतार घर से ले आया था। बड़ी बहू सलीके की हैं। सलोन की हैं। अमेठी से ही एम.ए. किया है। परछन आदि हो जाने के उपरांत मुँह दिखाई के समय भौजी ने उन्हें बड़े भैया को मुँहदिखाई के लिए आँगन में बुलवाया था।

"छुट्टन, टेंट ढीली करक पड़ी, का देहो मुँहदिखाई में बड़के की दुलहिन को?"

आँखें बंद कर उन्होंने सोचने की मुद्रा अपनाई थी, "अपनी सबसे प्रिय वस्तु।"

"लाओ निकालो, हम घूँघट उठाइत है दुलहिन का।"

बिछी जाजिम पर गर्दन झुकाए बैठी दुलहिन को घेरे बैठी मेहरियों ने मुँह पर आँचल दे खुखुआते हुए एक-दूसरे को कनखियों से देखा।

पूरबगाँव वाली की तिनक उनकी फुल्लौरी-सी नाक पर आ दुबकी थी।

"दिखाओ न मुँह भौजी, तब तो मुँहदिखाई देंगे।"

गुमान से तरबतर भौजी ने दुलहिन के चेहरे से घूँघट उठाया था।

गंदुमी सलोनापन क्षण भर को दमका था। बच्ची लगी बड़ी बहू उन्हें। एम.ए. की डिग्री नकली तो नहीं कहीं उसकी।

"निकारौ नेग, देख लीन्हउ न?" पान रचता है तो भौजी के होंठों पर।

अचानक वह झुके। दुलहिन की बगल में सटी बैठी भौजी को लपककर उन्होंने अपने गोद में कौरिया लिया और गठरी बना दुलहिन के सामने बैठा दिया।

"हमारी ओर से यह है आपका नेग। इनसे बड़ी मिल्कियत हमारे पास दूसरी नहीं है दुलहिन।"

"स्वीकारो। आशीष सहित।"

दुलहिन ने लखौटा नीचे धर कलाइयाँ झनकाते हुए उनको पैलगी की थी। चाँदी के पाँच रुपये धर दिए चचिया ससुर के पाँवों पर।

भौजी ने पलटकर आँखें तरेरी, "ठिल्लड़ न करो छुट्टन! सीधे-सीधे नेग निकारो। सगुन का समय है।"

निरीह शक्ल बना उन्होंने बड़े भैया की शरण ली। "हमने झूठ कहा बड़े भैया?"

बड़े भैया ने ठहाका भरा, "तुमने कोई झूठ नहीं कहा, छुट्टन। भई छुट्टन के नेग में हमारा भी नेग समझो।"

रामऔतार को उन्होंने हिदायत दी थी। आध घंटे में नहा-धोकर तैयार हुए जा रहे। बड़के की दुल्हन से कहना, नाश्ते में दलिया बन जाए तो बेहतर है।

"काहे नहीं बन जाएगा, मालिक।"

नाश्ता खत्म कर तैयार हो घर के दरवाजे पहुँचे थे।

बड़े भैया कहीं जाने के लिए तैयार दिखे।

अपना कार्यक्रम उन्हें बताना जरूरी लगा।

"साँझ को लखनऊ लौट जाना चाहते हैं हम। रामऔतार बता रहा था। पाँच बजे की है एक बस।"

"रुको न! जल्दी क्या है। आते नहीं कि फौरन लौटने के लिए फड़फड़ाने लगते हो। पूरबगाँव वाली दुलहिन भी नहीं रहीं अब।

"बाल-बच्चों की अपनी दुनिया है।"

"लौट के दोपहरी भोजन साथ करेंगे। यहीं हलबलखेड़े तक जा रहे हैं।" कलाई पलट घड़ी पर नजर डाली उन्होंने, "डेढ़-पौने दो तक लौट आएँगे।"

"अंऽऽ?" वह कुछ बोलने के लिए उद्यत हुए। बड़े भैया ठिठक गए, "बोलो?"

"नहीं-नहीं, आप जीप ले जाएँ।"

"हम जीप नहीं ले जा रहे। एकाध जगह रुकते हुए जाना है। भट्ठे पर नई ईंटें पारी जा रही हैं, वहाँ भी चक्कर लगाना है।"

"चौकसी नहीं होती तो काम में ढीले पड़ जाते हैं जन-मजूर। खैर, तुम बताओ?"

"समय है तो हम सोच रहे बड़े भैया कि कुछ पुराने मित्रों को देख आते।"

"देख आओ। जीप में डीजल भरा हुआ है। हम बड़के से कह देते हैं। भीतर से राइफल लाकर दे दे तुम्हें। रख लो गाड़ी में। सावधानी जरूरी है।

जहाँ तुम जाना चाहते हो वहाँ तो और भी।

चाहो तो रामऔतार को लिए जाओ साथ।"

भीतर चौंके थे वह। बड़े भैया ने कैसे अनुमान लगा लिया कि वह कहाँ जाना चाह रहे हैं?

बड़के को राइफल निकाल लाने के लिए कहकर बड़े भैया मुड़ गए।

कटरी से जुड़ा हुआ है झुमरी का गाँव। जंगल अब भी जंगल है। हालाँकि जिस हालत में रह रहे हैं, सोचकर नहीं चले थे कि बिना सेंट्रो और दिलावर के वह गाँव में होते हुए भी झुमरी के पास जा सकेंगे। हमेशा से निभता चला आया नियम तोड़कर।

रात सोने से पहले तारों की दूधिया टिमटिमाहट को निहारते-जीते हुए लगा था कि इस मसहरी के भीतर झुमरी होती तो -

सीने से दुबकी वह जिद ठान लेती। अभी वे नींद न बुलाएँ। वह मालिक के गोड़ चाँपेगी।

उम्र बीत गई। झुमरी के ठिकाने कभी गए नहीं।

दिलावर उसके घर जाकर उसे गाड़ी में बैठा लाता था। रात रुकना हुआ तो रुकते थे पुरवा जाकर मगर बड़े भैया से यही कहकर निकलते कि साँझ ही लौट रहे हैं लखनऊ।

राइफल उन्होंने आगे की सीट पर लिटा ली। देह के पिछले निचले हिस्से को छू रही है। गाड़ी चलाते हुए कंधे पर टाँगना मुश्किल है।

रमुवा की आकस्मिक मृत्यु के बाद से चिंतित रहने लगे थे। झुमरी अकेली रह गई है।

कुछ करना होगा।

क्या कर सकते हैं?

कुछ चीजें हैं, जो न पूरबगाँव वाली की जानकारी में थीं, न अभय और बहू की जानकारी में।

'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट्स' की मियाद अगले माह पूरी होने को है।

झुमरी का खाता उन्होंने चुपचाप गाँव के बगल वाले पोस्ट ऑफिस में बरसों पूर्व खुलवाया था। अँगूठा लगवाकर।

'पोस्ट मास्टर जनरल' विनोद उनका मित्र रहा है, स्कूल का सहपाठी। उचित अवसर देखकर वह कुछ न कुछ रकम उससे कहकर झुमरी के खाते में जमा करवाते रहते थे। विनोद हृदयाघात में चल बसा। हो रहे होंगे डेढ़ वर्ष। विनोद को खोकर उन्हें महसूस हुआ था, मित्रविहीन हो गए हैं वह।

जब भी मिलते, झुमरी को ऊपरी खर्च के लिए नकद थमा आते।

ढाई लाख रुपये यदि जमा करवा दें उसके नाम पोस्ट ऑफिस में तो नौ प्रतिशत ब्याज मिलता रहेगा उसे। रकम हाथ आते ही उन्हें यह काम बिना समय गँवाए पूरा कर देना है।

रास्ता ठीक चल रहे हैं?

ठीक ही चल रहे हैं बदला क्या है। रास्ते देरी से बदलते हैं, जिंदगी तेजी से।

पूछ-पाछकर झुमरी का घर ढूँढ़ना मुश्किल नहीं होगा। गाँव के भीतर ठीक उसके घर के दरवाजे अचानक जीप ले जाकर खड़ी कर देना मुनासिब होगा! किसी ने पहचान लिया बड़े भैया की जीप को तो?

पुरानी जगह खड़ी नहीं कर सकते। काफी दूर है घर।

झुमरी गाँव के दाहिने छोर जो बूढ़ा बरगद है, उससे लगी एक गड़ही है। बरगद के तने की आड़ में जीप कुछ देर के लिए खड़ी की जा सकती है।

राइफल जीप में नहीं छोड़ी जा सकती। साथ टाँगकर कैसे चल सकते हैं। झुमरी ने उन्हें उस रूप में कभी देखा नहीं। उनकी राइफल दिलावर के जिम्मे होती थी।

एक किशोर सामने से आता हुआ दिखा। भीगी मसें हड़ियल देह को मासूमियत नवाज रही थीं।

झुमरी का घर पूछने पर उसने कौतूहल से जीप की ओर देखा, फिर उनकी ओर।

"हियाँ से सीधे-सीध चले जाव। वह जो दुमंजिला मकान दिखाई पड़ि रहा है न! ठीक वहिक बगल में एक ठौ चबूतरा है। चबूतरे पर जो कोठरिया बनी है न। झुमरी बुआ का घर वही है।"

"रुको।" मुड़ते किशोर को उन्होंने टोका, "मेरा एक काम करोगे?"

"कौन काम?" किशोर की आँखों का कौतूहल अब भी उसकी आँखों में दुबका हुआ था।

"तुमने झुमरी को बुआ कहा न?"

"हाँअ तौ?"

"अपनी झुमरी बुआ को यहाँ बुला लाओगे? कहना, अंऽऽ, कहना उन्हें दिलावर बुला रहे हैं। बरगद की बगल में खड़े हुए हैं, मिलना चाहते हैं उनसे। मिलने के लिए आए हैं। जल्दी में हैं। लौटना है दूर।"

"बुआ के घर में साँकल लगी है, ताला पड़ा हुआ है।"

"झुमरी के घर में?" उन्होंने तसदीक करनी चाही।

"हाँ, उन्हीं के घर में।"

"कहीं गई हैं?"

"हाँ।"

"बता सकते हो कि कहाँ गई हैं, कहीं आस-पास?"

"आस-पास नहीं। बुआ तो भगवान के घर चली गई।" सुनकर वह भौंचक रह गए।

"तुम झुमरी के बारे में ही बता रहे हो, जिसका बेटा है रमुवा।"

"हाँ-हाँ, रमुवा की अम्मा झुमरी बुआ। रमुवा हमार दोस्त रहा। पहले रमुवा झुमरी बुआ क छाँड़ि के भगवान के घर चला गा। अब झुमरी बुआ रमुवा के पास चली गई।

यह जौ पीछे गड़ही दिखाई दै रही है न! लील गए झुमरी बुआ क। महीना भर पहिले।

दिखाई नहीं पड़ता आँखिन से उनको।

बताते हैं लोग उनकी बकरी पानी में घुस गई रहय। बकरी बच गई। बुआ डूब गई।"

किशोर हिलक-हिलक कर सुबकने लगा, सहसा।

सौदा-सुलफ मँगवाती रहय बुआ हमसे, उनके मरै के बाद उनकी बकरी रोज खूँटा तोड़ाय के यहीं गड़ही के किनारे आँके खड़ी होय जाति रही।

हफ्ता भर से नहीं दिखाई पड़ी, बकरिहाइन ककिया कहि रहि थीं। कौनो चिकउना (बकरा काटने वाला) पकड़ि लैगा बकरी क।"

सुनकर वह जैसे आपा खो बैठे। झुमरी को तलाशने गड़ही की ओर दौड़े।

अकबकाया किशोर भी उनके पीछे दौड़ पड़ा, चीखता हुआ। सुनाई पड़ रहा था उन्हें। यह क्या कर रहे हैं आप? गड़ही बहुत गहरी है। गड़ही के पास जाते ही आदमी रपट जाता है। बुलाती है गड़ही। बुलाकर लील लेती है। गड़ही के बारे में यह कहानी मुझे मेरे बाबू ने सुनाई थी। मेरे बाबू को उनके बाबू ने। उनके बाबू को, उनके बाबू ने। उनके बाबू को, उनके बाबू ने।

हाँफते हुए-से वह लौटकर किशोर के पास आ खड़े हुए।

पैंट की जेब से उन्होंने अपना मनी पर्स निकाला। उसमें से हजार रुपये निकालकर किशोर की मुट्ठी में चाँप दिए। सुबकन को घुटकता हुआ किशोर गीली चकित आँखों से उनकी ओर निर्निमेष देखने लगा।

"आप कौन है?"

"बताया था न! दिलावर।"

"न - आप दिलावर नहीं हैं।"

"दिलावर नहीं तो फिर कौन हैं हम?"

जीप के करीब आ गए थे वे।

उचककर जीप में बैठ गए। वाईपर आनकर दिया। गाड़ी स्टार्ट की, मोड़ी। एक्सीलेटर पर पाँव दे दिया। बूँदाबाँदी हो रही है शायद!

'आप रमुवा के बप्पा हैं, हमरे रमुवा के बप्पाऽऽ।"

बिरझाए किशोर की आवाज उनकी जीप के पीछे दौड़ रही थी।

एक साथ कई बच्चे पिपिहरी बजा रहे हैं। कनफोड़ई तीखे स्वर कानों में सूजे से चुभ रहे हैं।

बिसाती अब तक गली से गया नहीं?

मंगलू आया नहीं अब तक!

चार बजे तक अपने घर जाकर लौट आएगा कहकर गया था। कहीं ऐसा तो नहीं मंगलू ने आकर दरवाजा खटखटाया हो और उन्हें सुनाई न दिया हो लेकिन ऐसा होना संभव नहीं। नींद में थोड़े ही हैं वह। नींद तो बैर निभा रही है। मामूली झपकी तक नहीं आई उन्हें।

दोपहर का भोजन कराके फौरन निकल गया था मंगलू। कोई नहीं आ रहा होगा। अपने नियम का पक्का है। सुबह साढ़े छह के करीब उसकी माँ उसे उनके दरवाजे छोड़ जाती है। उनके माने मकान मालिक के बड़े से गेट के अंदर। आते ही उसका काम शुरू हो जाता है।

वह चाय बनाता है। नाश्ता तैयार करता है। फिर थैला लटकाकर साग-सब्जी लेने निकल जाता है। वे नहाते-धोते हैं। वह कपड़े धोता है। कपड़े क्या धोता है, मंगलू अकसर किसी न किसी कमीज या कुर्ते के बटन तोड़ देता है।

बिसाती के पास सुई-धागा होगा?

क्यों नहीं होगा। सब कुछ होगा। गाँव में वह प्रत्येक जरूरत की चीज रखता था। सुई और धागा दोनों होंगे उसके पास। बटन ही नहीं टाँकती सुई, जिंदगी के पैबंदों पर भी टाँके लगाने में माहिर है। उठें। गली में झाँक आएँ लेकिन जाएँ चिगड़े-मिगड़े पायजामे-कुर्ते में! बिसाती से मिलना जरूरी है। जाना तो होगा। देखना चाहते हैं उसे एक बार। ठीक वही है ननकू बिसाती कि बदल गया है।

विचित्र है। सब कुछ बदल रहा है मगर कहाँ से और कैसे?

कोई हफ्ता भर पहले उन्होंने कोठी में अखबार डालने वाले से कहा था कि वह हिन्दी के तीन फलाँ-फलाँ और अँग्रेजी के दो फलाँ-फलाँ अखबार उनके कमरे पर भी डाल जाया करे। अगले किसी रोज वह गाँव जाने के लिए निकल सकते हैं लेकिन लौटने पर उन्हें सारे अखबार मिलने चाहिए। एक भी कम न हो। पड़े रहेंगे कमरे के बाहर। कोठी के पिछवाड़े स्थित इस कमरे से कौन उठाकर ले जाएगा। चौकीदार भोलू से भी कहकर जाएँगे। वह गेट पर ही नजर न रखे, उनके कमरे का भी खयाल रखे। रखेगा तो वह उसका भी खयाल रखेंगे। कम से कम सुबह बस स्टैंड के पास वाली पत्र-पत्रिकाओं की दुकान से अखबार ढोकर लाने की जहमत से तो मुक्ति मिलेगी। कभी जाने में देर तो जाती तो एकाध अखबारों की प्रतियाँ खतम हो जाती थीं। दुकानदार चकित होता था। एक सवाल दागा था उसने।

"बाबूजी, पत्रकार हैं?"

"अकेले हैं।" वह हँसे थे।

भई, बारी-बारी से पढ़ते रहते हैं। जवाब और हो भी क्या सकता था।

दुकानदार के चेहरे के भाव से प्रतीत हुआ था कि वह उनके जवाब से संतुष्ट नहीं है।

सोचा होगा उसने, बाबूजी के घर पर टीवी नहीं होगा।

अभय को पता है। फलाँ-फलाँ दो अखबार उनकी आदत बन चुके हैं। बरसों से घर पर वही आ रहे हैं।

अभय को यह भी पता है कि बप्पा जहाँ भी होंगे, इन दो अखबारों से ही उनके दिन की शुरुआत होती होगी। उन तक पहुँचने और अखबार पहुँचाने का माध्यम भी ये दो ही अखबार हैं, हो सकते हैं।

गोमतीनगर वाले उनके कमरे में उनकी और पूरबगाँव वाली की साथ-साथ वाली तसवीर टँगी हुई है। उन्होंने नहीं, पूरबगाँव वाली ने मढ़वाकर टाँग दिया था। वे कभी इस पक्ष में नहीं रहे, न उनकी रुचि रही है कि अपने ही घर में रहते हुए घर की दीवारों पर अपनी निर्जीव तसवीर टाँगी जाए।

उन्हें उम्मीद थी। अभय उनके घर से नदारद होने को हल्के से नहीं ले सकता। उनका अपना खून है। प्रतीक्षा करेगा वह कि रूठ के गए हुए बप्पा स्वयं कुछ दिनोपरांत वापस घर लौट आएँगे। नादान नहीं है वह। देने को वह उनके घर छोड़ने के दो-चार रोज बाद ही पुलिस में गुमशुदगी की एफ.आई.आर. दर्ज करा सकता था। गाँव फोन कर सकता था। उनकी आदत में शुमार अखबार में फोटो प्रकाशित करवा उनसे लौट आने का मनुहार कर सकता था। यही कारण है। आदत में शुमार अखबारों के अलावा वह अन्य उन अखबारों को भी खरीद रहे हैं जिन्हें उन्होंने अपने कार्यालय से अभय को उठाकर लाते हुए देखा है। मुफ्त घर आने वाले अखबारों को भी वह पढ़ा करते थे।

शायद अभय उनमें से किसी में उनके घर लौट आने के मनुहार का इश्तहार दे दे - तो उन तक उसकी सूचना तो पहुँचनी चाहिए न?

अपनी समझ और धैर्य से वह रोज सभी अखबारों के गुमशुदा कॉलम को एक बार नहीं, कई-कई बार देखते हैं और अनेक लोगों के बीच अपनी निर्जीव तसवीर तलाशते हैं।

कहीं नहीं मिली उन्हें उनकी निर्जीव तसवीर।

जिसे कभी वह देखना नहीं पसंद करते थे, क्यूँ देखने का मन करता है अब उसी तसवीर को? छोड़ आए घर तो छूट जाना चाहिए न।

कैसा अनहोना क्षण था। कल्पना नहीं की थी उन्होंने। दुस्साहस, दुस्साहसी हो उठे सभी सीमाएँ पार करता हुआ, सोच भी कैसे सकते थे?

उनकी निगाह कभी नहीं उठी बाबा की आँखों में आँखें डालने के लिए। न अपने बप्पा की आँखों की सीध में आँखें उठाने की। बड़े भैया के अदब में न कभी आवाज ऊँची हुई उनकी, न गर्दन सीधी।

अभय ने थप्पड़ मारने के लिए उठी उनकी कलाई को उद्दंडता से कस लिया था अपनी मुट्ठी में।

मुट्ठी कसती ही गई थी जैसे उनकी कलाई न हो, गर्दन हो उसकी पकड़ में।

"जमीन-जायदाद का मामला मेरे सामने सुलटाइए बप्पा! कई बार दोहरा चुका हूँ। यह आखिरी बार है। आखिरी बार।

हमें सब मालूम है। सब कच्चा चिट्ठा।

मरने से पहले अम्मा ने कुछ नहीं छिपाया। बताया। आपने कोई अलग वसीयत बना रखी है।

अम्मा यह भी बता गई हैं। जिंदगी भर आप अपनी कमाई बेशर्मी से लुटाते रहे हैं, उस बदजात बेड़िन पर।

पढ़ाया है उसके बेटे को आपने। घर बनवाकर दिया है उसे। जमीन खरीदकर दी है। पतुरिया माँग भरती रही है आपके नाम की।

हिम्मत है और सुनने की?

है तो सुनिए। अम्मा कहती थीं, बँटवारे के लिए आप कभी राजी नहीं होंगे। बड़ी अम्मा के साथ आपके नाजायज संबंध रहे हैं। छिः, मुँह देखना भी पाप है ऐसे कमीने बाप का - "

कलाई झटककर वह आवेश से काँपते हुए अपनी अलमारी की ओर बढ़े थे। अपनी भरी हुई राइफल निकालने।

सहते रहे। खामोश रहे। कोशिश करते रहे कि पूरबगाँव वाली और उनके बीच उस सप्तपदी की आँच सदैव बनी रहे, भले वह उसे कायम न रख पाए हों मगर - मगर - मगर वह कहाँ कायम रख पाई थीं। उन्होंने यह भी स्वीकारा था कि उनके साथ जबरई नहीं हुई थी।

पूरबगाँव वाली के स्वीकारने के बावजूद उन्होंने उनसे वादा किया था। बहकता मर्द ही नहीं है, बहकती औरत भी है। दोनों अपनी कुल मर्यादाओं और दायित्वों का पालन करेंगे। उनके संशय के बावजूद वह उन्हें कभी नहीं छोड़ेंगे। घर की देहरी के लिए भी लक्ष्मण रेखा होगी। रमुवा के बाद उन्होंने उस वचन को निभाया। लगातार अपने से

झूठ बोलते रहे। सोचकर कि झूठ को सच बना लेंगे एक रोज। आदत पड़ जाएगी झूठ से सच बने सच की। आदत पड़ गई। उनका विद्रोही चेतन अनुकूलित होता रहा और पाया ठाकुर अखिलेश प्रताप सिंह ने कि वह उन तिल-तिल तोड़ने वाले जीवन के काले पृष्ठों को दफन कर चुके हैं बल्कि दफन हो गए वह स्वयं।

झुमरी से कहा भी था उन्होंने।

काश! तुम्हारे लिए मेरे पास कोई नितांत अपना ठौर-ठिकाना होता। घर होता मेरा अपना। सिर्फ अपना! जहाँ मैं तुम्हें रख सकता। वह घर जो मेरा घर कहलाता है, सिर्फ मेरा नहीं है।

कहते हैं झुमरी! मर्द को उसकी सत्ता से पुत्र के रूप में से वारिस देने वाली स्त्री ही बेदखल करती है। आज मैं बेदखल हो गया। कर दिया गया।

हाँ, उस पराए खून से। शायद मैं गलत कह गया, जिसे मान लिया गया वह पराया कैसे हुआ?

ट्रिगर पर से किसने उनकी थर्राती कलाई धर ली थी।

अभय तो दीवाल से चिपका हुआ आसन्न मृत्यु की कल्पना से अवसन्न दाँत भींचे अडौल खड़ा हुआ था उनके सामने।

"राइफल नीचे करिए मालिक! काहे अनर्थ को न्यौत रहे।

अपने माने हुए से मुकर रहे। नहीं मुकर सकते आप। चेत में आइए मालिक चेत में।"

'झन्नन, झन्नन, झन्नन, झन्नन - ' उफली बजा रहा बिसाती।

खरीदने वाले को बजाकर दिखा रहा होगा। फिर-फिर दिखाना पड़ता है उसे। थिरक रहा है क्या वह स्वयं डफली की थाप पर?

कहाँ भटक रहे हैं वह!

सुई-धागा लेना है उन्हें उससे, बटन टाँकने के लिए। नहीं तो कपड़े पहन नहीं पाएँगे। कम कपड़े हैं उनके पास। कुछ नए खरीदे थे यहाँ उन्नाव आकर।

मंगलू आया नहीं। चाय का समय हो रहा।

छत पर पंखे के डैने घूमने लगे हैं। बिजली आ गई।

तेज चल रहा है पंखा। फुल पर है शायद रेग्यूलेटर। उठकर कम करना होगा।

उसी रात लखनऊ से निकल लिए थे, अपनी अस्थिरता से भयभीत। अनर्थ से भयाक्रांत। क्रोध कहीं मदांध हो उठा फिर तो? निकलने से पूर्व भरी राइफल से कारतूस अलग कर दिए थे उन्होंने।

बल्कि कारतूसों का पैकेट रख लिया था अपने साथ। किसी गटर के हवाले कर देंगे।

गाँव से वापस ही क्यों लौटे?

गाँव में नहीं टिक सकते थे तो गड़ही को अंतिम ठौर बना लेते!

पंखा फुल पर चल रहा है और वे पसीने से नहा रहे हैं। क्या वह गड़ही के भीतर प्रवेश कर रहे हैं? पानी कमर से ऊपर हो रहा और ऊपर और ऊपर और ऊपर।

अपने को साध नहीं पा रहे।

तलुवों को गड़ही की चिकनी मिट्‌टी रपटा रही, रपट रहे हैं वे। लो -

लो - रपट गए।

साँसें भकभका रहीं पानी में -